प्रकाशित: 11जुलाई 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

रमेश कुमार दुबे

नेहरूवादी मुस्लिपरस्ती के कारण कांग्रेस ने इजरायल से रखी दूरी, राष्ट्रीय हितों को किया अनदेखा

नेहरू-गांधी खानदान ने मुस्लिम वोटों के लिए हिंदू हितों की बलि ही नहीं चढ़ाई बल्कि ऐसी विदेश नीति भी अपनाई जिससे राष्ट्रीय हित तार-तार होते गए। इसे भारत की मध्य-पूर्व नीति से समझा जा सकता है। प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के रूप में नेहरू ने पश्चिम एशिया के संबंध में भारतीय विदेश नीति में तय कर दिया था कि फिलीस्तीन से दोस्ती इजरायल से दूरी के रूप में दिखनी चाहिए। नेहरू की इस आत्मघाती नीति को आगे चलकर सभी कांग्रेस सरकारों ने आंख मूंदकर स्वीकार किया। लेकिन इसका हासिल क्या हुआ ? इजरायल से दशकों तक मुंह फुलाए रखने और अरब देशों की जी हजूरी करने के बावजूद अरब देशों ने न तो कश्मीर मुद्दे और न ही पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद पर भारत का साथ दिया। नेहरूवादी विदेश नीति घरेलू मोर्चों पर भी सत्ता से आगे नहीं बढ़ पाई। मुसलमानों के वोट हासिल करने के लिए तथाकथित सेकुलर कांग्रेसी नेताओं ने एक ओर तो फिलीस्तीनियों के समर्थन में चिल्ल-पो मचाई तो दूसरी ओर इजरायल को पानी पी-पीकर कोसा। लेकिन इन नेताओं ने कभी भी मुसलमानों की तालीम, आजीविका जैसे सवालों की ओर ध्यान नहीं दिया। बस उनका यही उद्देश्य था कि मुसलमान पिछड़े बने रहें ताकि इजरायल के बहाने उनके एकमुश्त वोट पार्टी को मिलते रहें। भला हो नरेंद्र मोदी का जिन्होंने 2014 के लोक सभा चुनाव में मुस्लिम वोट बैंक के मिथक को तोड़ दिया अन्यथा भारत सरकार आज भी इजरायल को कोस रही होती।

इजरायल के प्रति भारतीय नीति में उल्लेखनीय बदलाव तभी आ पाया जब कांग्रेस व भारत सरकार पर नेहरू-गांधी परिवार के बजाए पी. वी. नरसिंह राव का वर्चस्व था। उसके बाद अटल बिहारी वाजपेयी सरकार में भारत-इजरायल संबंधों में प्रगाढ़ता आई। 2003 में इजराइली प्रधानमंत्री एरिल शेरॉन की भारत यात्रा से द्विपक्षीय संबंधों के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इस यात्रा के दौरान पर्यारण संरक्षण, नशीली दवाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, आतंकवाद जैसे विषयों पर समझौते के साथ-साथ बराक मिसाइल और फाल्कन सिस्टम की खरीद पर विचार किया गया। लेकिन 2004 में केंद्र सरकार में कांग्रेस की वापसी के बाद भारत सरकार फिर से फिलीस्तीन का राग अलापने लगी।

मुस्लिमों के मन में इजरायल के प्रति कड़वाहट को देखते हुए कांग्रेस पार्टी आजादी के पहले से ही मुस्लिमपरस्ती का आगाज कर चुकी थी। कांगेस पार्टी तो इजरायल के गठन के ही खिलाफ थी। 1936, 1938 और 1940 में गांधी व नेहरू ने इजरायल के गठन का विरोध करते हुए कहा था – धर्म के आधार पर देश नहीं बन सकता। लेकिन इन्हीं नेहरू ने 1947 में धर्म के आधार पर देश विभाजन को सहमति दी।

1949 में भारत ने इजरायल को संयुक्त राष्ट्र संघ का हिस्सा बनाने के विरूद्ध वोट दिया। 1950 में भारत ने इजरायल को मान्यता दी और 1951 में इजरायल को मुंबई में वाणिज्य दूतावास खोलने की अनुमति दी; लेकिन मुस्लिम वोटों के नाराज हो जाने के डर से भारत ने इजरायल में अपना वाणिज्य दूतावास नहीं खोला। इसे मुस्लिमपरस्ती की इंतिहा नहीं तो क्या कहा जाएगा। इजरायल के प्रति नेहरूवादी नीति "गुड़ खाय गुलगुला से परहेज" वाली रही। भारत सरकार ने मुसीबत के समय जब भी इजरायल को पुकारा तो उसने भारत का साथ देने में तनिक भी संकोच नहीं किया। लेकिन मुसीबत के समय में भी नेहरूवादी विदेश नीति मुस्लिमपरस्ती से आगे नहीं बढ़ पाई। इसे 1962 के भारत-चीन युद्ध के घटनाक्रमों से समझा जा सकता है।

1962 में अपनी पतली हालत देख जब भारत ने इजरायल से मदद मांगी तब इजरायल ने एक भरोसेमंद साथी का परिचय देते हुए भारत को निराश नहीं किया। लेकिन, नेहरू ने शर्त रख दी कि जिन जहाजों पर सैनिक साजो-सामान आएगा, उन पर इजरायल का झंडा नहीं लगा रहेगा। नेहरू की दूसरी शर्त यह थी कि इजराइली हथियारों पर इजरायल का नाम नहीं रहेगा। इजरायल ने इन शर्तों को मानने से इंकार कर दिया जिससे नेहरू को झुकना पड़ा। क्या ऐसी ढुलमुल विदेश नीति के बल पर कोई देश विश्व शक्ति बन सकता है ? 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध, 1999 के कारगिल युद्ध और आतंकवाद से लड़ने पर सहयोग के दौर में भी इजरायल के प्रति नेहरूवादी "गुड़ खाय गुलगुला से परहेज" वाली नीति जारी रही।

भारतीय कांग्रेसी नेता मुस्लिम वोट बैंक के नाराज होने से इस कदर भयाक्रांत रहे हैं कि इजरायल से मदद लेने के बावजूद वे उसके साथ संबंध को खुलेआम स्वीकार नहीं कर पाए। कांग्रेस की यह मुस्लिमपरस्ती आज भी वैसी की वैसी ही है। जो कांग्रेस पार्टी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की इजरायल यात्रा पर सवाल उठाते हुए कह रही है कि उन्हें इजरायल के साथ-साथ फिलीस्तीन भी जाना चाहिए था, वह इस सवाल पर कन्नी काट जाती है कि पिछले 60 सालों में फिलीस्तीन जाने वाले भारतीय राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री इजरायल क्यों नहीं गए ?

(लेखक केन्द्रीय सचिवालय में अधिकारी हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)